॥ श्री अग्रसेन जयते ॥

विचार संगोष्ठी

(महाराजा श्री अग्रसेन : जीवन एवं दर्शन)

लेखक एवं वार्तालाप :

चाँद बिहारी लाल गोयल

'साहित्य-रत्न, साहित्य निधि'

बुधवार, 5 अक्टूबर, 2005

सायं 7.00 बजे

संयोजक :

श्री अग्रवाल शिक्षा समिति

अग्रसेन कटला, अग्रसेन मार्ग, आगरा रोड़, जयपुर-302 003

फोन : 0141-2614051

॥ श्री अग्रसेन जयते ॥

अग्रकुल प्रवर्तक – समाजवाद के प्रथम प्रणेता

महाराजा श्री अग्रसेन

स्वीकार करो सबका प्रणाम।
नमन तुम्हें, हे युग दृष्टा, हे प्रकृति देव, हे सृष्टि सपूत।
पुण्य पवन से वेगवान, हे भारत माता के अग्रदूत।
आप शांति धाम हो, वीरश्रेष्ठ, हो पौरुष युग की अमर देन।
वाणी वंदन स्वीकार करो, हे महाराज श्री अग्रसेन।
श्रद्धांजली अर्पित चरणों में, श्रद्धा के सुमन समर्पित हैं।

* * *

यह निर्विवाद सत्य है कि दिव्य ज्ञान का प्रकाश सारे विश्व में सर्वप्रथम धर्म-भूमि भारत से ही विस्तारित हुआ। भारत-भूमि सदैव ही अवतारों और महापुरुषों की जन्म और उनकी क्रीड़ा-स्थली के रूप में विख्यात रही है। इस पवित्र भूमि पर भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम राम, श्रीकृष्ण, महात्मा गौतम बुद्ध, भगवान महावीर, संत कबीर जैसे महान पुरुषों ने जन्म लिया। ऐसे ही राष्ट्रगौरव, आर्यकुल दिवाकर, ऋषियों की वैदिक परम्पराओं और समाजवाद के संस्थापक, अहिंसा के पुजारी, शांति दूत महाराजा अग्रसेन ने महाभारत के पश्चात् लुप्त होती संस्कृति, जर्जरित होती सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण का अभूतपूर्व कार्य किया। उन्होंने वेदों में वर्णित धर्माचरणों का निर्वाह करते हुए ''ब्रम्ह, अग्निस्टोम, राष्ट्र-भृति इत्यादि 18 महायज्ञों का सम्पादन कर अनेक लोकोपकारक सिद्धियों को अर्जित किया और अपने राज्य में ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' साकार कर धर्म के आचरण, समृद्धियों और सु-राज्य की गंगा बहाई थी।

वेदानुयायी आदर्श पुरुष महाराज अग्रसेन ने अथर्व-वेद के मंत्र ''शत-हस्त समाहरः, सहस्त्र-हस्त संकिरः'' अर्थात् ''हे दो हाथों वाले, तू सौ हाथों वाला बनकर कृषि-व्यापार-उद्योगों, पशु-पालन इत्यादि से प्रचुर धन-ऐश्वर्यों को प्राप्त कर और हजारों हाथों वाला होकर समाज और राष्ट्र-उत्थान के लिए अभाव-ग्रसित एवं पीड़ितों की सहायता कर।'' महाराजा ने इस भावना को

आधार बनाकर समृद्ध और सुखी समाज की संरचना का बीड़ा-उठाया। इस हेतु ''एक ईंट और एक रुपया'' के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर अभाव ग्रसितों को सुखद जीवन जीने की सरल व सर्व हितकारी योजना से लाभान्वित किया। महाराजा का यह मूल मंत्र सहकारिता और समता के आधार पर भेदभाव रहित पूर्णरूप से स्नेह, सद्भाव, समता, सम्मान, समकक्षता, संगठन और पुर्नवास का अनूठा परिचायक है जो अध्यावधि ऐतिहासिक उदाहरण एवं चिर-भविष्य के लिए प्रेरणा-स्त्रोत बना रहेगा।

प्राचीन महापुरुषों का अवतरण, अस्तित्व और उनका कार्यकाल ऐतिहासिक प्रमाणों एवं तथ्यों के अभाव में अप्रकाशित रहता आया है। प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की क्रमबद्ध परम्परा के न होने एवं विदेशी आक्रांताओं द्वारा इतिहास की सामग्री नष्ट अथवा क्षत-विक्षत कर दिये जाने के कारण अनेक अमूल्य तथ्य नष्ट हो गए अथवा उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में पुरातत्व अवशेषों, लोक गाथाओं, जन श्रुतियों और किवदंतियों के द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती है, उसी के माध्यम से महापुरुषों के जीवन, कार्यों, उपलब्धियों आदि का मूल्यांकन संभव होता है।

ऐतिहासिक साक्ष्य— महाराजा अग्रसेन के संबंध में भी ऐतिहासिक साक्ष्य ''महालक्ष्मी व्रत कथा'', श्री मद्भागवत के उपाख्यान ''उरुचरितम्'', जनश्रुतियों तथा प्राचीन संग्रहीत वंशावलियों में ही मिलते हैं। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के मत से ''अग्रवंश वैश्यानु कीर्तनम तथा उरुचरितम् दोनों ही ग्रंथों में जिन मान्यताओं, परम्पराओं के उल्लेख मिलते हैं, वे हजारों वर्षों बाद आज भी अग्रवालों की रीति-रिवाज और संस्कारों का अंग बने हुए हैं। यह सुनिश्चित है कि प्राचीन काल में आग्रेय गण (अग्रोहा) का अस्तित्व था और उसकी स्थापना अग्रसेन नामक राजन ने की थी। इसी संदर्भ में महाराजा अग्रसेन ऐतिहासिक पुरुष है।

जन्म— ऐसे युग-सृष्टा, वैश्य समाज के आदि पुरुष और अग्रवाल जाति के परम पितामह प्रातः स्मरणीय महाराजा अग्रसेन का जन्म मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम की चौंतीसवीं पीढ़ी में सूर्यवंशी-क्षत्रीय कुल के महाराजा बल्लभसेन के घर में द्वापर के अन्तिम चरण में महाकलियुग के प्रारंभ होने के लगभग 85 वर्ष पूर्व हुआ था।

आज से 5191 वर्ष पूर्व आश्विन शुक्ला एकम् को महाराजा अग्रसेन का प्रादुर्भाव हुआ।

वंश-परिचय— महाराजा अग्रसेन के पिता महाराजा बल्लभसेन अग्रोदक-राज्य (अगाच्च जनपद) के नृप थे। यह राज्य उस वक्त में वर्तमान राजस्थान प्रान्त के मारवाड़ क्षेत्र से लेकर उत्तर में हिमालय की तलहटी में स्थित गंगा-यमुना के पश्चिमी मैदान तथा व्यास नदी के तट से लेकर दिल्ली व आगरा तक विस्तृत था। इस विशाल जनपद की तत्कालीन राजधानी वर्तमान राजस्थान प्रान्त के जोधपुर जिले के अन्तर्गत प्रतापनगर नामक स्थान थी जो कि राज्य के एक छोर पर स्थित थी। इस स्थान पर महाराजा श्री बल्लभसेन तथा उनके पूर्वज महाराज श्री धनपाल (कुबेर) तथा पितामह राव महीधर ने अनेकों वर्षों तक रहते हुए इस जनपद की शासन व्यवस्था का संचालन किया था। इनका राज्य शासन काल त्रेता-युग से लेकर द्वापर युग तक था। इस सम्बन्ध में डॉ. सत्यकेतू विद्यालंकार ने "लक्ष्मी व्रत कथा" के आधार पर वंशावली उल्लेखित की है—

महाराजा अग्रसेन के पूर्वज और उनकी वंशावली

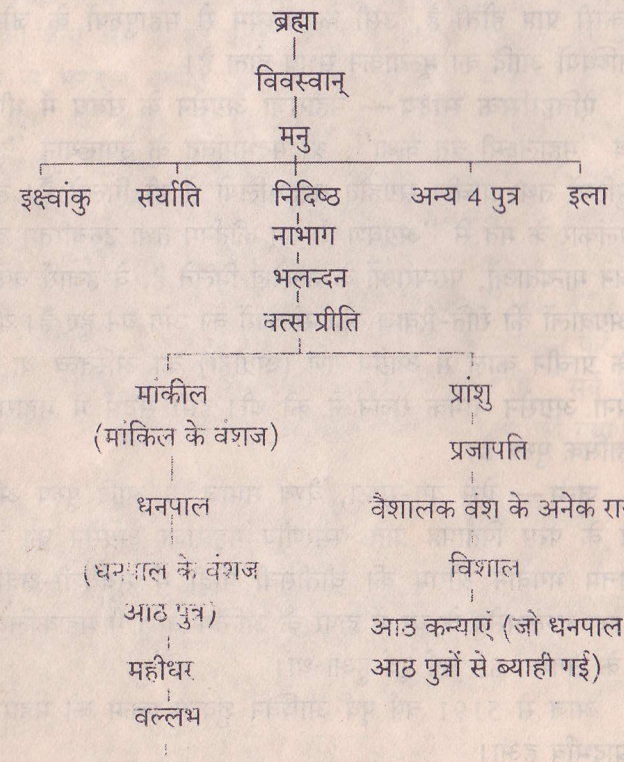

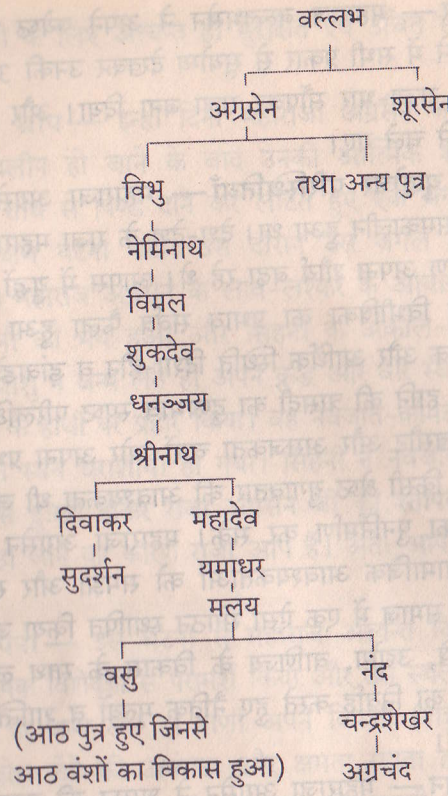

परिवार— महाराजा श्री अग्रसेन जी के एक अनुज श्री शूरसेन जी एवं एक बहिन कुमुद कंवर का जन्म भी द्वापर के अन्तिम चरण में ही हुआ था। इनकी माता का नाम मेद कुवेरी था जो मदसौर राज्य के राजा की पुत्री थी।

शिक्षा-दीक्षा— महाराजा अग्रसेन का बाल्यकाल विविध अनूठी बाल-क्रीड़ाओं, शिक्षा-दीक्षा, अस्त्र-शस्त्र विद्या, मानव मात्र की सेवा जैसे कार्यों में बीता। आपने वेद-पुराण, राजनीति, अर्थ-शास्त्र इत्यादि अनेक विद्याओं का समग्र ज्ञान अर्जित किया। गुरु-कुल में सभी सहपाठी राजकुमारों में आप हर क्षेत्र में अग्रणी रहे तथा अपने गुणों और योग्यता से अग्रसेन नाम को सार्थक किया। आप रण-कौशल में अद्वितीय योद्धा और राजनीति में कुशल प्रशासक बने।

महाराज अग्रसेन अपने वंशानुगत कुलदेवी नाग-कन्या (मन्शादेवी), इष्टदेवी महालक्ष्मी जी तथा इष्टदेव भगवान विष्णुनारायण के परम भक्त थे।

राज्य-भार— महाराज बल्लभसेन ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अग्रसेन को राज्य-भार संभालने में सभी प्रकार से सुयोग्य देखकर उनकी 35 वर्ष की आयु में अग्रजनपद का राज्य-भार सौंपकर राजा बना दिया। और स्वयं वान-प्रस्थ ग्रहण कर तप करने चले गए।

महाभारत युद्धोत्तर परिस्थितियाँ— महाराजा अग्रसेन का प्राकट्य महाभारत युद्ध के समकालीन हुआ था। देश-देश के राजा महाराजा अपने पौरुष और वैभव के कारण अपना शौर्य बढ़ा रहे थे। आपस में युद्धों में तल्लीन थे। महाभारत युद्ध की विभीषिका का प्रभाव सर्वत्र फैला हुआ था। राष्ट्र की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति दिशा-हीन व डांवाडोल हो गई थी। अपार जन-धन की हानि की त्रासदी का दुष्प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित था। भुख-मरी, गरीबी, लूट-खसौट और अराजकता चारों ओर अपना प्रभाव दिखा रही थी। ऐसे समय पर, किसी श्रेष्ठ युगावतार की आवश्यकता थी जो राष्ट्रीय क्षति को रोककर राष्ट्र का पुनर्निर्माण कर सके। महाराजा अग्रसेन ने समय की परिस्थितियों और सामाजिक आवश्यकताओं को समझा और सनातन वैदिक व्यवस्था के अनुसार समाज में एक ऐसा संगठन स्थापित किया जो राष्ट्र सुरक्षा ही नहीं, बल्कि कृषि, उद्योग, वाणिज्य के विकास के साथ लोकतांत्रिक व समाजवादी व्यवस्था का निर्वाह करते हुए नैतिक मूल्यों व शान्ति स्थापना की पुनःप्रतिष्ठा कर सका।

राज्य विभाजन— महाराजा अग्रसेन ने शासन की बागडोर संभालते ही न्याय व समानता व समय की आवश्यकता को देखते हुए निर्णय लिया कि अपने अनुज भ्राता शूरसेन को पृथक राज्य का शासक बनाते हुए अग्रजनपद में एक पृथक अलग राज्य स्थापित किया जाय। इस प्रकार शासन व्यवस्था के सुसंचालन एवं आपसी संबंधों को सुदृढ़ और मधुरतम बनाने के लिए राज्य को दो भागों में विभक्त कर शूरसेन को समान अधिकार प्रदान करते हुए राजा के पद से सुशोभित किया तथा उनकी राजधानी वर्तमान आगरा (अग्रनगर) शहर को बनाया। इसके फलस्वरूप दोनों ही राज्यों की सीमाओं पर सुरक्षा व्यवस्था कायम होकर बाहर के खतरों से निश्चिंत हो गए।

राजधानी परिवर्तन— महाराजा ऐसे महान व उदार हृदय के थे कि वे अपनी प्रजा को कभी युद्ध तथा अराजकता की शिकार बनते देखना नहीं चाहते थे। इस हेतू आपने शासन व्यवस्था के सुदृढ़ सुसंचालन के लिए अपनी राजधानी प्रतापनगर को कहीं अन्यत्र स्थानान्तरित कर, स्थापित करने का निर्णय

लिया। नई राजधानी के लिए अत्यन्त ही सुरक्षित एवं उचित स्थान की खोज करने लगे।

सिंहनी का श्राप— इन्हीं दिनों महाराजा अग्रसेन जब अपने पिता बल्लभसेन के ब्रह्मलीन हो जाने के बाद उनकी आत्मिक शान्ति के लिए लोहागढ़ (पंजाब) तीर्थ से पिण्ड दान कर लौटते हुए एक जंगल में से गुजर रहे थे, एक विलक्षण घटना घटी। उस दौरान उस जंगल में एक सिंहनी प्रसवावस्था में थी। महाराज अग्रसेन के लाव-लश्कर के आवागमन और भारी कोलाहल से सिंहनी को भय हुआ और सिंहनी के अकाल-प्रसव हो गया। सिंहनी के गर्भस्थ शिशु ने जन्म लेते ही अपने क्रुद्ध और वीर स्वभाव का प्रदर्शन करते हुए महाराजा के हाथी पर प्रहार किया। वह नवजात-कोमल शावक टक्कर खाकर हाथी सहित स्वयं धराशायी हो गया। सिंहनी ने नवजात शिशु की इस आकस्मिक मृत्यु से दुःखी होकर राजा अग्रसेन जी को शापित कर दिया कि "मेरे पुत्र-विहीन हो जाने का कारण राजा आप हैं। अतः आप भी वंश-विहीन रहेंगे।"

नगर स्थापना— इस घटना से महाराज अत्यन्त विस्मित हुए और धर्माचार्यों व अन्वेषक विशेषज्ञों से परामर्श किया और उस स्थल को वीर-प्रसूता माना। जिस धरा पर जन्म लेते ही प्राणी अपने विपक्षी (शत्रु) को पहचानने तथा उससे प्रतिशोध लेने की उत्कंण्ठा और क्षमता रखता हो उस धरती पर निवास करने वाला मनुष्य साहसी, वीर-पराक्रमी और उद्यमी अवश्य होगा और यही विचार कर अग्रसेन जी ने अपने राज्य की राजधानी उसी भूमि पर स्थापित करने का निश्चय कर लिया तथा मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की पंचमी को नये नगर की नींव रख दी। जिसका नाम अग्रोदक नगर (वर्तमान नाम अग्रोहा) रखा। यह स्थान हरियाणा प्रदेश में हिसार से 20 कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

इस नगर का विस्तार 12 योजन था। उसके चारों ओर पक्का परकोटा और खाई खुदी हई थी जो नगर की सुरक्षा के लिए बनी थी। एक मुख्य द्वार तथा अनेक गुप्त द्वार थे। नगर में शुद्ध जल की पर्याप्त व्यवस्था थी। अनेक बाग-बगीचे, कुंज बने हुए थे। नगर चार मुख्य सड़कों द्वारा विभक्त था। प्रत्येक सड़क के दोनों ओर राजमहल और अनेक राज-प्रासाद व ऊँचे-ऊँचे भवन थे। इस नगर में अग्रवालों की कुल देवी महालक्ष्मी एवं शिव-पार्वती तथा इष्टदेव भगवान विष्णु के बड़े विशालकाय भव्य मंदिर बनवाये। सवा लाख भवनों की सुव्यवस्थित बस्ती बसाई।

एक रुपया – एक ईंट प्रथा— बाहर से इस नगर में आबाद होने के लिए आने वाले प्रत्येक परिवार को बिना किसी अमीर-गरीब के भेद-भाव के प्रत्येक घर से "एक रुपया एक ईंट" का उपहार दिया जाता था ताकि नवागन्तुक अपना घर बसाकर उदर-पूर्ति हेतु व्यवस्था कर उपार्जन कर सके। बाढ़, अकाल या व्यापार में घाटा लगने या किसी प्राकृतिक आपदा के आने पर यह समाजवाद की प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती थी।यह सहायता एक परम्परा थी। अतः उसे स्वीकार करने में किसी के भी आत्म-सम्मान को आघात नहीं पहुँचता था। इस प्रकार का साम्यवाद व विश्व-बन्धुत्व का अनूठा उदाहरण सर्वप्रथम महाराज श्री अग्रसेन जी ने ही प्रतिपादित किया। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि महाराज अग्रसेन विश्व में सहकारिता एवं समाजवाद के प्रथम प्रणेता एवं जनक थे।

महाराजा अग्रसेन की आदर्श शासन व्यवस्था

अग्रगण-राज्य में क्षत्रियों के उपनिवेश, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों के जनपद, आमीर, दरद, काश्मीर, पशुपति आदि अनेक जातियों के जनपद थे। महाराजा के समय वंशानुगत शासन था किन्तु आपने राज्य की प्रशासन व्यवस्था लोकतन्त्र एवं पंचायती राज्य शासन की पद्धति पर आधारित समाजवाद व समन्वयवाद की भावना से अठारह क्षेत्रों में विभक्त गणराज्य के रूप में संचालित की थी। इस राज्य की संचालन व्यवस्था के लिए वैश्य समाज को एक अखण्ड इकाई के रूप में प्रतिष्ठित कर एक नई जाति का संगठन स्थापित किया जो बाद में वैश्य वर्ण (अग्रवाल) नाम से प्रचलित हुआ। इन वैश्यों के प्रतिनिधि 18 गण (कुल) थे। 18 प्रमुख कुटुम्बों में से चुने हुए सदस्य ही प्रतिनिधि होते थे। इनके परामर्श से ही समस्त राज्य की व्यवस्थायें संचालित होती थी। उस समय वैश्य जाति ही व्यापार संचालन में लगी हुई थी, अन्यजाति के लोग व्यापार कर्म के अतिरिक्त अन्य कार्य कर, जीवन की जरूरते पूरी करते थे। वैश्य वर्ग के लोग नाना प्रकार के काल-चित्र, पारस मुद्रक, चन्दन-काष्ठ, सुगन्धित द्रव्यों, औषधियों, दुकूलवस्त्रों, सोने-चांदी के आभूषण आदि का व्यापार सम्पूर्ण पश्चिमी ऐशिया, अफ्रीका, ग्रीक, स्पेन, चीन आदि देशों के साथ करते थे। वैश्य वर्ग का शासन एवं विदेशों के साथ व्यापार आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व तक चलता रहा। इस प्रकार अग्रोहा व्यापारिक दृष्टि से वैभवशाली और देश-देशान्तरों में इसकी प्रसिद्धि थी। आवश्यकता पर वैश्य

जाति के लोग अपनी रक्षा-सुरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र धारण कर क्षत्रिय धर्म का अनुसरण करते हुए युद्धों में भी भाग लेते थे।

महाराज अग्रसेन बड़े दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे, वे यह भली-भांति जानते थे कि ज्यों ज्यों किसी की प्रसिद्धि व समृद्धी बढ़ती है, त्यों त्यों उसके शत्रु भी बढ़ने लगते हैं। उन्होंने दूरदर्शी नीति से कार्य करते हुए बड़े-बड़े शक्तिशाली राजाओं से मित्रता कर उनके राज्यों से व्यापार-व्यवसाय संबंध स्थापित किये। उस समय के प्रबल एवं अधिक समृद्धशाली राजाओं से वैवाहिक गठबन्धन जोड़े।

विवाह-संबंध— महाराजा अग्रसेन ने तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर अपना विवाह 40 वर्ष की अवस्था तक नहीं किया। उस समय दक्षिण भारत में .नागवंश के राजा सबसे शक्तिशाली माने जाते थे। नागलोक के वैभवशाली नगर कोल्हापुर के प्रतापी शासक राजा कुमद ने अपनी सुलक्षणा, विदूषी कन्या माधवी के विवाह के लिए स्वयंवर रचाया। भू-लोक व देवलोक के अनेक राजा और इन्द्रलोक के देवराज इन्द्र तथा महाराजा अग्रसेन स्वयंवर में आये। नागकन्या सुन्दरी माधवी ने महाराज अग्रसेन को सुयोग्य जानकर वरण कर लिया तथा महाराज अग्रसेन का विवाह माधवी से हो गया। यह विवाह दो विभिन्न संस्कृतियों का मिलन था। अग्रसेन सूर्यवंशी थे और राजा कुमुद नागवंशी।

इन्द्र कोप— देवराज इन्द्र माधवी की सुन्दरता पर मोहित था और माधवी के साथ विवाह रचाकर नागवंश के साथ मैत्री करना चाहता था, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। इससे राजा इन्द्र के मन में अग्रसेन के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया और ईर्ष्याभाव के वशीभूत होकर बदला लेने की भावना से इन्द्र ने महाराज अग्रसेन के राज्य में वर्षा बरसाना बन्द कर दिया, फलस्वरूप खेती-बाड़ी नष्ट हो गई, भयंकर अकाल पड़ गया। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। परन्तु महाराजा अग्रसेन इससे विचलित नहीं हुए और अपने इष्ट भगवान शिव की आराधना करने लगे और इस कष्ट से मुक्ति हेतु शक्ति और उपाय की प्रार्थना की। भगवान शिव ने इस कष्ट के निवारण के लिए कुलदेवी महालक्ष्मी को प्रसन्न करने का निर्देश दिया।

लक्ष्मी का वरदान— महाराज अग्रसेन ने भगवान शिवजी की आज्ञानुसार कुलदेवी महालक्ष्मी की तपस्या कर उसे प्रसन्न किया और राज्य में धन-धान्य का वरदान प्राप्त किया। महा लक्ष्मी इनकी कठोर तपस्या से बड़ी प्रसन्न हुई, और कहा—

एक रुपया – एक ईंट प्रथा— बाहर से इस नगर में आबाद होने के लिए आने वाले प्रत्येक परिवार को बिना किसी अमीर-गरीब के भेद-भाव के प्रत्येक घर से "एक रुपया एक ईंट" का उपहार दिया जाता था ताकि नवागन्तुक अपना घर बसाकर उदर-पूर्ति हेतु व्यवस्था कर उपार्जन कर सके। बाढ़, अकाल या व्यापार में घाटा लगने या किसी प्राकृतिक आपदा के आने पर यह समाजवाद की प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती थी।यह सहायता एक परम्परा थी। अतः उसे स्वीकार करने में किसी के भी आत्म-सम्मान को आघात नहीं पहुँचता था। इस प्रकार का साम्यवाद व विश्व-बन्धुत्व का अनूठा उदाहरण सर्वप्रथम महाराज श्री अग्रसेन जी ने ही प्रतिपादित किया। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि महाराज अग्रसेन विश्व में सहकारिता एवं समाजवाद के प्रथम प्रणेता एवं जनक थे।

महाराजा अग्रसेन की आदर्श शासन व्यवस्था

अग्रगण-राज्य में क्षत्रियों के उपनिवेश, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों के जनपद, आमीर, दरद, काश्मीर, पशुपति आदि अनेक जातियों के जनपद थे। महाराजा के समय वंशानुगत शासन था किन्तु आपने राज्य की प्रशासन व्यवस्था लोकतन्त्र एवं पंचायती राज्य शासन की पद्धति पर आधारित समाजवाद व समन्वयवाद की भावना से अठारह क्षेत्रों में विभक्त गणराज्य के रूप में संचालित की थी। इस राज्य की संचालन व्यवस्था के लिए वैश्य समाज को एक अखण्ड इकाई के रूप में प्रतिष्ठित कर एक नई जाति का संगठन स्थापित किया जो बाद में वैश्य वर्ण (अग्रवाल) नाम से प्रचलित हुआ। इन वैश्यों के प्रतिनिधि 18 गण (कुल) थे। 18 प्रमुख कुटुम्बों में से चुने हुए सदस्य ही प्रतिनिधि होते थे। इनके परामर्श से ही समस्त राज्य की व्यवस्थायें संचालित होती थी। उस समय वैश्य जाति ही व्यापार संचालन में लगी हुई थी, अन्यजाति के लोग व्यापार कर्म के अतिरिक्त अन्य कार्य कर, जीवन की जरूरते पूरी करते थे। वैश्य वर्ग के लोग नाना प्रकार के काल-क्षेत्र, पारस मुद्रक, चन्दन-काष्ठ, सुगन्धित द्रव्यों, औषधियों, दुकूलवस्त्रों, सोने-चांदी के आभूषण आदि का व्यापार सम्पूर्ण पश्चिमी ऐशिया, अफ्रीका, ग्रीक, स्पेन, चीन आदि देशों के साथ करते थे। वैश्य वर्ग का शासन एवं विदेशों के साथ व्यापार आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व तक चलता रहा। इस प्रकार अग्रोहा व्यापारिक दृष्टि से वैभवशाली और देश-देशान्तरों में इसकी प्रसिद्धि थी। आवश्यकता पर वैश्य

जाति के लोग अपनी रक्षा-सुरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र धारण कर क्षत्रिय धर्म का अनुसरण करते हुए युद्धों में भी भाग लेते थे।

महाराज अग्रसेन बड़े दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे, वे यह भली-भांति जानते थे कि ज्यों ज्यों किसी की प्रसिद्धि व समृद्धी बढ़ती है, त्यों त्यों उसके शत्रु भी बढ़ने लगते हैं। उन्होंने दूरदर्शी नीति से कार्य करते हुए बड़े-बड़े शक्तिशाली राजाओं से मित्रता कर उनके राज्यों से व्यापार-व्यवसाय संबंध स्थापित किये। उस समय के प्रबल एवं अधिक समृद्धशाली राजाओं से वैवाहिक गठबन्धन जोड़े।

विवाह-संबंध— महाराजा अग्रसेन ने तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर अपना विवाह 40 वर्ष की अवस्था तक नहीं किया। उस समय दक्षिण भारत में नागवंश के राजा सबसे शक्तिशाली माने जाते थे। नागलोक के वैभवशाली नगर कोल्हापुर के प्रतापी शासक राजा कुमद ने अपनी सुलक्षणा, विदूषी कन्या माधवी के विवाह के लिए स्वयंवर रचाया। भू-लोक व देवलोक के अनेक राजा और इन्द्रलोक के देवराज इन्द्र तथा महाराजा अग्रसेन स्वयंवर में आये। नागकन्या सुन्दरी माधवी ने महाराज अग्रसेन को सुयोग्य जानकर वरण कर लिया तथा महाराज अग्रसेन का विवाह माधवी से हो गया। यह विवाह दो विभिन्न संस्कृतियों का मिलन था। अग्रसेन सूर्यवंशी थे और राजा कुमुद नागवंशी।

इन्द्र कोप— देवराज इन्द्र माधवी की सुन्दरता पर मोहित था और माधवी के साथ विवाह रचाकर नागवंश के साथ मैत्री करना चाहता था, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। इससे राजा इन्द्र के मन में अग्रसेन के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया और ईर्ष्याभाव के वशीभूत होकर बदला लेने की भावना से इन्द्र ने महाराज अग्रसेन के राज्य में वर्षा बरसाना बन्द कर दिया, फलस्वरूप खेती-बाड़ी नष्ट हो गई, भयंकर अकाल पड़ गया। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। परन्तु महाराजा अग्रसेन इससे विचलित नहीं हुए और अपने इष्ट भगवान शिव की आराधना करने लगे और इस कष्ट से मुक्ति हेतु शक्ति और उपाय की प्रार्थना की। भगवान शिव ने इस कष्ट के निवारण के लिए कुलदेवी महालक्ष्मी को प्रसन्न करने का निर्देश दिया।

लक्ष्मी का वरदान— महाराज अग्रसेन ने भगवान शिवजी की आज्ञानुसार कुलदेवी महालक्ष्मी की तपस्या कर उसे प्रसन्न किया और राज्य में धन-धान्य का वरदान प्राप्त किया। महा लक्ष्मी इनकी कठोर तपस्या से बड़ी प्रसन्न हुई, और कहा—

तब वंशे मही सर्वा पूरिता च भविष्यति तर वंशे जातिवर्णेषु कुल नेता भविष्यति। अद्यारभ्य कुले-तव नाम्ना प्रसिध्यति अग्रवंशीया हि प्रजाः प्रसिद्धाः भुवनत्रय। भुजा प्रसादं तव वसेत् नान्यस्मै प्रतिदापयत् येन सा सफला सिद्धिर्भूर्यात्तव युगे-युगे। मम पूजा कुले यस्य सोऽग्रवंशी भविष्यति इतयुक्त्वान्तदथे लक्ष्मी समुद्दिश्य महावरम्।

अर्थात् "हे राजन! हे वैश्य वंश के प्रकाश! इस तप को बंद करो। गृहस्थ धर्म बड़ा अनुपम है, इस सनातन धर्म को समझो। सब आश्रम और वर्ण गृहस्थ में ही व्यवस्थित हैं। तुम मेरी आज्ञा के अनुसार करो, मैं तुम्हें सब वैभव और ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करूँगी।

यह सम्पूर्ण पृथ्वी तेरे वंश से पूरित होगी। आज से यह कुल तेरे नाम से प्रसिद्ध होगा। अग्रवंशी प्रजा तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगी।

तेरी भुजाओं में सदा प्रसाद रहे। युग-युग में तेरी सिद्धि सफल हो। जिस कुल में मेरी सदा पूजा होती है, ऐसा यह अग्रवंश है।"

इन्द्र से मित्रता— महालक्ष्मी के वरदान के अनुसार महाराजा ने अपने राज्य में नदियों से नहरे निकाली, कूओं-बावड़ियों का निर्माण करवाया। सूखी धरती की प्यास बुझाई। अन्न-जल की समस्या दूर की। पशु-धन की रक्षा की। अकाल और अनावृष्टि पर विजय पाई। इस प्रकार से महाराज ने इन्द्र के द्वारा दी गई यातना का मुकाबला कर मुक्ति पाई। महाराज के नैतिक बल और महालक्ष्मी जी की कृपा के फलस्वरूप राजा इन्द्र महाराजा की शक्ति के समक्ष टिक नहीं सका और उसे पराजय माननी पड़ी। वह पराजय से घबराकर ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्माजी ने उसे युगपुरुष अग्रसेन से वैर-भाव छोड़कर मित्रता करने का परामर्श दिया। इन्द्र ने देवर्षि नारद के सहयोग से महाराज से संधि कर मित्रता कर ली।

अन्य विवाह— महाराज अग्रसेन जी ने दूसरा विवाह केत-मालखंड क्षेत्र के नृपति सुन्दर सेन की पुत्री सुन्द्रावती से और तीसरा विवाह दक्षिण में ही चम्पावती नगर के राजा धनपाल की पुत्री धनपाला से किया। तथा अन्य विवाह नागराज के अवतारधारी कोलपुर के राजा महीधर की कन्याओं से करके महाराज अग्रसेन जी ने अपने राज्य को सुदृढ़ और वैभवशाली बनाया।

महाराजा अग्रसेन ने अग्रोहा नगर का वैभवपूर्ण निर्माण कर, अपने विवाह आदि कार्य सम्पन्न किये। प्रजा पूर्ण समृद्धशाली व सुखी थी। परन्तु महाराजा के संतान का अभाव बना रहा। क्योंकि नगर बसाने के पूर्व गर्भिणी सिंहनी ने

महाराजा को संतान-हीन होने का श्राप दिया था। महाराज इस श्राप से अत्यंत विचलित थे और श्राप से मुक्ति चाहते थे।

लक्ष्मी की पुनः उपासना— महाराजा के समय तथा सतयुग, त्रेता व द्वापर युग में पशु-पक्षी आदि मानवीय भाषा बोलने की क्षमता रखते थे। मनुष्य भी उनकी वाणी को भली-भांति समझते थे। महाराजा को सिंहनी का श्राप स्पष्ट स्मरण था। अपनी वंशवृद्धि एवं शासन संचालन हेतु सिंहनी के श्राप का प्रायश्चित करने की दृष्टि से सभासदों, ऋषियों व विशेषज्ञों से परामर्श किया तथा परामर्श के अनुसार श्राप-मुक्ति हेतु कुलदेवी महालक्ष्मी की शरण में पुनःतपस्या करने का निश्चय किया।

महाराज ने यमुना तट पर अपनी नव-विवाहिता रानियों के साथ महालक्ष्मी जी की पूजा-अर्चना के साथ तप आरम्भ कर दिया। महालक्ष्मी ने प्रसन्न होकर महाराज को तपस्या बंद कर गृहस्थाश्रम का पालन करने की आज्ञा दी और कहा कि राजन क्षात्र धर्म के अतिरिक्त वैष्णव धर्म को राज-धर्म घोषित कर वैष्णव धर्माचरण का पालन करो, क्योंकि यही चारों आश्रमों का आधार और भूलवश हुए पाप कर्मों का प्रायश्चित करने का सुगम साधन है। तुम्हारी वंशवृद्धी का समय आ गया है, तुम्हारा कुल तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होकर अग्रवंशी कहलायेगा। तुम्हारे कुल में मेरी सदैव पूजा होती रहेगी और यह कुल वैभवशाली रहेगा। महाराज अग्रसेन महालक्ष्मी का वरदान प्राप्तकर अपनी रानियों सहित राजधानी पुनः लौट आये और गृहस्थाश्रम का निर्वाह करने लगे।

रानियाँ— महाराज की 18 रानियाँ थी जिनके नाम– मित्रा, चित्रा, शुभा, शीला, शिखा, शांता, रजा, परा, शिरा, शशी, शची, रम्भा, भवानी, समा, सखी, धनपाला, सुंदरावती तथा माधवी था। (माधवी सबसे बड़ी एवं पटरानी थी)।

महाराजा के कनिष्ठ भ्राता शूरसेन जी की दो रानियाँ थीं। एक का नाम सुपात्रा था, उसके तीन पुत्र हुए। दूसरी का नाम माद्री था, उसके सात पुत्र हुए। सभी संताने प्रतापी, तेजस्वी और पिता व कुल को सुख-समृद्धि देने वाली थी।

पुत्र— महाराजा अग्रसेन की रानी धनपाला से नौ पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः तम्बोल कर्ण, ताराचन्द, वीरभान, वासुदेव, नारसेन, अमृत सेन, इन्दरमल, माधव सेन व गौधर थे। इसी प्रकार रानी सुन्दरावती के भी नौ पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः पुष्पदेव, गेंदूमल, करणचन्द्र, मणिपाल, वृंददेव, ढावणदेव, सिंधुपति, जैत्रसंघ व मंत्रमति थे।

बड़ी रानी माधवी के पुत्र का नाम विभू था। इस प्रकार अन्य रानियों से भी अनेक पुत्र और पुत्रियों ने जन्म लिया।

पुत्रों के विवाह— जब राजा अग्रसेन के पुत्रादि विद्याध्ययन कर चुके और सभी शास्त्रों में निपुण हो गये और युवावस्था में आये, तब देश-देशान्तरों के राजाओं की ओर से उनके विवाह के लिए संदेश और निमंत्रण आने लगे। महाराजा अग्रसेन ने अपने प्रमुख मंत्रियों सैनी रख, सैलकरन, कोपलऋषि और रंगराज आदि के परामर्श से अपने पुत्रों का विवाह अपने देशवासी आस-पास के राजाओं की कन्याओं से धूमधाम से कर दिये।

महाराज को अभी इन विवाह-समारोहों से अवकाश भी नहीं मिला था कि अहिनगर राज्य (यानि अनरवर्त या पाताल राज्य जिसे अब अमेरिका देश कहते हैं) के नागवंशी राजा जामवन्त के पुत्र राजा वासुकि (विसानन) ने अपनी 18 पुत्रियों के विवाह का आगृहपूर्ण प्रस्ताव महाराज के 18 पुत्रों के साथ करने का रखा। उनका प्रण था कि जिस राजा के 18 पुत्र होंगे उनके यहाँ ही अपनी पुत्रियों का विवाह करूँगा। महाराजा अग्रसेन ने उनके प्रण की पूर्ती करते हुए अपने 18 पुत्रों का दूसरा विवाह राजा विशानन की 18 पुत्रियों से कर दिया। राजा विशानन की ये पुत्रियाँ नागकन्याओं के नाम से जानी जाती थी। जो नाग-चोलों को धारण रखती थी। विवाह के उपरान्त देशवासी राजाओं की कन्याऐं तो गर्भवती हो गई, किन्तु राजा वासुकि की कन्याऐं नाग-चौलों को धारण करने के कारण गर्भवती नहीं हुई। महाराज को इससे बड़ी चिंता हुई। महाराज अग्रसेन जी का परम भक्त भानजा जसराज बड़ा गुणी और तपस्वी था। उसने अपने मामा अग्रसेन जी की चिंता को दूर करने के लिए राजा वासुकि से इस समस्यापूर्ण स्थिति से मुक्ति का मार्ग प्राप्त किया और नाग-पंचमी के पर्व पर जैसे ही कन्याओं ने स्नान हेतु अपने चोले उतारे, जसराज ने युक्ती से उन चोलों को लेकर अग्नि में प्रवेश ले लिया। चौले जलकर नष्ट हो गये, साथ में जसराज ने अपने आपको न्योछावर कर दिया। चोले नष्ट हो जाने से नागकन्यायें अत्यन्त विचलित हुईं, लेकिन महाराज अग्रसेन और महारानी माधवी ने प्रेमपूर्वक सांत्वना देकर समझाया कि तुम्हारे द्वारा ''चोलें'' धारण किये रहने से तुम संतान-विहीन रहती। अब तुम वंशवृद्धि लायक हो। तुम्हें संतान प्राप्ति हो सकेगी। तुम्हारे चोलों को सदैव स्मृति-स्वरूप याद किया जाता रहेगा। तुम्हारे वंशज विवाह के अवसर पर वर-कन्या ''मुहरी'' (चूंड़ी) तथा ''चुनरी'' तुम्हारी स्मृति स्वरूप धारण करेंगे। ''मुहरी'' नाग का तथा ''चुनरी'' चोलों (काँचली) का चिन्ह-स्वरूप

रहेगा। अग्रवंश के लोग नागों (सर्पों) को मामा कहेंगे। श्रावण शुक्ला पंचमी को सर्पों की पूजा कर उन्हें दूध पिलाया जायेगा। भवनों के दरवाजों पर नागरूपी थापे मांडे जावेंगे।

महाराज अग्रसेन को अपने परमभक्त प्रिय भानजे जसराज के जाने का शोक सताने लगा और उसे पुनः प्राप्त करने हेतु भगवान शिव की प्रार्थना की। भगवान शिव ने उसे पुनर्जन्म दिया तथा वह योगी ''भूभूतिया भट्ट'' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अग्रसेन का वंश— महाराजा अग्रसेन के वंश में आशातीत वृद्धि हुई। अपनी संतानों और पौत्रों आदि की पहचान के लिए उन्होंने दो पृथक नाम दिये। जो सन्तानें राजाओं की पुत्रियों से पैदा हुई उनका नाम राजवंशी या देशवंशी दिया और जो पुत्र राजा वासुकि की पुत्रियों (नाग-कन्याओं) से पैदा हुए उनके नाम बिसवंशी या नागवंशी दिया गया। महाराजा के 54 पुत्र और 18 पुत्रियाँ तथा 52 पौत्र और 52 पौत्रियाँ हुईं।

अन्य राज्यों से संबंध— महाराज अग्रसेन महालक्ष्मी से अभय वर प्राप्त कर अपने राज्य को सुदृढ़ व संगठित करने में लग गये। महाराजा ने आग्रेय गण राज्य की नींव डाली। अपने चातुर्य एवं वीरता से तत्कालीन राजनीति पर भारी प्रभाव डाला। अपने आग्रेय गणराज्य को जो कौरव कुल गणराज्य के अति निकट था स्थाई सुरक्षा बनाये रखने के लिए अपने राज्य की वैश्य कन्या से राजा धृतराष्ट्र का विवाह कराया। इस कन्या से यूयूत्सु नामक पुत्र का जन्म हुआ (शल्य पर्व 85)। महाभारत युद्ध के पूर्व दुर्योधन ने सेनाओं के मध्य खड़े होकर कहा था कि इस युद्ध को जो 'अन्यायकारक' मानता हो तो हाथ उठाकर कहे। तभी युयुत्सु इस युद्ध को अन्यायकारक मानकर अलग हो गया, जिसने बाद में कौरव कुल का तर्पण किया। महाराज ने अनेक छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक बड़े गणराज्य की स्थापना की। उस समय के नागवंशी, यदुवंशी, सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी इत्यादि राजाओं तथा मत्स्य, योद्धेय, शिव, त्रिगर्त, कैकय, मगध, मालव आदि गणराज्यों से पारस्परिक घनिष्ठ संबंध स्थापित किये। महाराज के राज्य के अन्तर्गत गौड़ (गुड़गांव), महाराष्ट्र (मेरठ), रोहिताश्व (रोहतक), हांसी, हिसार, पुण्यपतन (पानीपत), करनाल, नगरकोट (कोटकांगड़ा), लवकोट (लाहौर), मण्डी, विलासपुर, गढ़वाल, जींद, सपीदम, नाभा, नारिनवल (नारनौल) आदि नगर सम्मिलित थे।

अट्ठारह यज्ञ— महाराज अग्रसेन ने जब अपने वंशवृद्धि का विस्तार

देखा तो अपने समूचे साम्राज्य को गणराज्यों के रूप में अपने पुत्रों में विभक्त करने का निर्णय लिया। महाराज की धर्म और न्याय के प्रति अगाध श्रद्धा थी। धर्माचरण द्वारा वे प्रजा में नैतिक अभ्युदय और आदर्श स्थापित करना चाहते थे। उस समय धर्म सिद्धी, सुख-समृद्धि और कार्य-सिद्धि के लिए विशाल यज्ञों और अश्वमेघ यज्ञों के आयोजन करने की परम्परा थी। ये यज्ञ राजा-महाराजाओं की प्रतिष्ठा के मापदण्डों के साथ-साथ राष्ट्र की भावनात्मक एकता एवं जन-जन के विश्वास से जुड़ने के लिए सशक्त माध्यम भी थे। सम्पूर्ण राज्य उसमें भाग लेता था और पवित्र द्रव्यों की आहूति द्वारा पर्यावरण तथा मानव मात्र के स्वास्थ्य कल्याण की कामना करता था। इससे राजा और प्रजा दोनों की चित्तवृत्तियाँ शुद्ध और सात्विक होकर समाज में सदाचार की वृद्धि होती थीं।

अतः महाराजा अग्रसेन ने अपने गणराज्य को 18 विभिन्न गणराज्यों में विभक्त कर 18 गणाधिपति नियुक्त करने के उद्देश्य से 18 अश्वमेघ यज्ञ करने का निर्णय किया। यज्ञों की व्यवस्थाओं का सम्पूर्ण प्रबन्ध अपने कनिष्ठ भ्राता श्री शूरसेन जी को सौंपा। यज्ञ के बृम्हा का आसन महर्षि गर्ग मुनि को दिया। जो महाराजा के कुलपुरोहित भी थे। दूर-दूरस्थ देशों एवं राज्यों के अधिपतियों को यज्ञ में सम्मिलित होने का निमंत्रण भेजा। यज्ञ में बड़े-बड़े मुनि, विद्वान, राजा-महाराजा सम्मिलित हुए।

अट्ठारह ऋषि— 18 यज्ञों के अधिष्ठिता-कर्ता मुख्य ऋषिवर सर्वश्री गर्ग, गोभिल, गौत्तम, मैत्रेय, जैमिनी, शेगल (शाण्डिल्य), वत्स, उरु (ओर्व), कौशिक, वशिष्ठ, कश्यप, ताण्डप, माण्य मांडव्य, धौम्य, मुद्गल, अंगिरा, भृगु, तैतरिय, नागेन्द्र, आस्तिक, भंदल आदि ऋषि मुनि बने।

महाराजा अग्रसेन ने प्रत्येक यज्ञ में प्रत्येक कुल (गण) के एक-एक प्रतिनिधि के रूप में अपने अठारह पुत्रों को यजमान नियुक्त किया और एक-एक ऋषि को उसका पुरोहित बनाया। उन्हीं ऋषियों के नाम पर अठारह कुलों यानी गौत्रों की संज्ञा दी गई, जिससे वंश परम्परा पृथक जानी जा सके। जैसे गर्ग मुनि के नाम पर गर्ग, भंदल ऋषि के नाम पर भंदल गौत्र आदि निर्धारित किये गये। यह निश्चय किया गया कि भविष्य में वैवाहिक संबंध इन्हीं गौत्र-कुलों में एक गौत्र को छोड़कर किये जायें। इस प्रकार महाराजा अग्रसेन जी ने 18 कुलों की संरचना कर उन्हें एक झण्डे के नीचे एकत्र कर उसे वैश्य वंशी समाज संगठन की एक स्वतंत्र जाति आग्रेय जो अब अग्रवाल नाम से जानी जाती है दिया। अठाहरवां यज्ञ गौतम ऋषि ने कराया उसी समय अहिंसा की

घोषणा हुई इससे यह यज्ञ अधूरा कहा गया और प्रस्थापित गोयन गौत्र को आधा माना गया।

अट्ठारह गोत्र— अग्र समाज के गणाधिपतियों और ऋषियों (पुरोहितों) के आधार पर गौत्रों का नाम निर्धारण इस प्रकार किया गया :—

क्रम संख्या	नाम गोत्राधिपति	नाम ऋषि (पुरोहित)	नाम गोत्र
1.	पुष्पदेव	गर्ग	गर्ग
2.	गेंदूमल	गोभिल	गोयल
3.	करणचन्द्र	कश्यप	कुच्छल
4.	मणिपाल	कौशिक	कंसल
5.	वृंददेव	वशिष्ठ	बिंदल
6.	ढावणदेव	धौम्य	धारण
7.	सिंधुपति	शान्डिल्य	सिंहल
8.	जैत्रसंध	जैमिनी	जिंदल
9.	मंत्रपति	मैत्रेय	मित्तल
10.	तम्बोलकर्ण	तांडप	तिंगल
11.	ताराचन्द्र	तैतिरेय	तायल
12.	वीरभान	वत्स	बंसल
13.	वासुदेव	धन्यास (भंदल)	भंदल
14.	नारसेन	नागेन्द्र	नांगल
15.	अमृतसेन	मांडव्य	मंगल
16.	इन्दरमल	और्व	ऐरण
17.	माधवसेन	मुद्गल	मधुकुल
18.	गौधर	गौत्तम	गोयन

महाराजा अग्रसेनजी ने गौत्रों की व्यवस्था ऋषियों के नाम से इसलिए बनाई कि उनके पुत्रादि जो एक ही पिता की सन्तान होने से आपस में भाई-बहिन थे, उन में परस्पर विवाह संबंध नहीं हो सकते थे अतः इस प्रकार की ऋषि परम्परा से पृथक गौत्र व्यवस्था प्रचलित कर उनमें विभाजन कर आग्रेय (अग्रवाल) समाज में विवाह व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया।

स्वगौत्र विवाह-निषेध— अनादिकाल से भारत में गौत्र परम्परा रक्त-शुद्धि पर आधारित और विज्ञान सम्मत पद्धति रही है। एक ही रक्त संबंध में विवाह संबंध करने से वंश-वृद्धि को आघात मिलता है और समाज में नई प्रतिभा का विकास अवरुद्ध हो जाना माना जाता है। व्यक्ति में नये गुणों की

वृद्धि के लिए भिन्न-भिन्न रक्तांश (जींस) अपेक्षित होते हैं। एक ही गौत्र परिवार में विवाह होने से वे ही रक्तांश पीढ़ी-दर-पीढ़ी घूमते रहते हैं और प्रतिभा-विकास की सम्भावनाऐं क्षीण हो जाती है। अतः भारतीय शास्त्रों में स्वगौत्र विवाह का निषेध करते हुए कहा गया है कि "दुहिता-दूर-हिता" अर्थात कन्या का विवाह दूर यानी दूसरे गौत्र में होना हितकर है। उसका विवाह समगोत्र में नहीं करना चाहिए।

अहिंसा परमोधर्म— महाराजा श्री अग्रसेन के द्वारा आयोजित सत्रह यज्ञ निर्विघ्न पूरे हो गये। जब 18 वें यज्ञ का समय आया तो यज्ञ से पूर्व महाराजा को ज्ञान-बोध हो गया। उन्हें यज्ञ में दी जाने वाली पशु (घोड़े) बली में हिंसा रूपी पाप का बोध हुआ, उन्हें ऐसे कृत्य से गम्भीर घृणा हुई। उन्होंने अनुभव किया कि वैश्यों-क्षत्रियों का परमधर्म तो पशु-पालना, उनकी रक्षा करना है, वध करना नहीं। उन मूक प्राणियों के वध करने से कोई धर्म नहीं बल्कि पाप ही लगेगा। पशुवध तो महापाप कर्म है यदि धर्म सम्मत यज्ञ में पशु-वध किया जाता है तो कतई युक्ति-संगत नहीं है अपितु पाप के भागीदारी बनकर नर्क यातना के अधिकारी है। ऐसी हिंसा से किसी यज्ञ द्वारा, किसी लक्ष्य की प्राप्ति कतई सम्भव नहीं है। जीवों पर दया करनी चाहिए, उनकी रक्षा करनी चाहिए। यह विचार कर महाराज ने अपने भ्राता राजा शूरसेनजी को और अपने पुत्रादिक वंशजों को इस प्रकार के हिंसामय यज्ञ को करने से मना कर दिया। महाराजा अग्रसेन ने यज्ञ स्थल से घोषणा करते हुए कहा कि—

अहं स्वभातृन् पुत्रांश्च तथां कन्याः कुटुम्बिनः
इदमेवोपदिशामि न कश्चिद्धधमाचरेत्।।

"यज्ञ में पशु हिंसा से मुझे घृणा हो गई है। अतः मैं अब अपने समस्त बंधु-बांधवों, पुत्रों, कन्याओं, कुटुम्बियों तथा वैश्य कुलों को यही उपदेश देता हूँ कि वे कोई हिंसा न करें।"

महाराजा अग्रसेन का यह हृदय परिवर्तन उनके अहिंसाप्रिय, स्नेहिल स्वभाव के अनुकूल था। उन्होंने किसी ऐसे अधार्मिक कार्य को करने से सर्वदा मना कर दिया, जिससे मनुष्यों को तो क्या, मूकजीवों को भी कष्ट की अनुभूति होती हो। यह हिंसा पर अहिंसा, क्रूरता पर करूणा एवं स्नेह तथा पाशविकता पर मानवता की श्रेष्ठतम विजय थी।

महाराजा अग्रसेन की इस विचारधारा का अग्रवाल एवं वैश्य जाति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यह उनकी विचारधारा का ही प्रभाव था कि आज भी

अग्रवाल जाति निरामिष, शाकाहारी, अहिंसक एवं धर्मपरायण जाति के रूप में प्रतिष्ठित है। आज जबकि विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्र ओर विदेशों में भी अहिंसा की ओर प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, उससे महाराजा अग्रसेन की दूरदर्शिता का परिचय मिलता है।

वैश्य-कर्म प्रथा— महाराजा अग्रसेन ने अपनी प्रजा को युद्धों के अवसर पर तो अस्त्र-शस्त्र धारण कर अपनी रक्षा स्वयं करने के लिए तैयार किया था, लेकिन साथ ही युद्धोत्तर समय में राष्ट्र को सुखी-समृद्धशाली और आत्म-निर्भर बनाये रखने के लिए वैश्य कर्म– कृषि, गौपालन, व्यापार, उद्योग करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने इस दृष्टि से सारी प्रजा को वैश्य-कर्मी-अग्रवाल घोषित कर दिया। लेकिन अपने पूर्व-स्वरूप क्षत्रियोचित आचारण-व्यवहार को भी कायम रखा। इसके लिए सामाजिक व्यवस्था का अधिकार प्रदान किया कि प्रत्येक वैश्यवंशी-अग्रवाल एक दिन के लिए स्मृति स्वरूप अवश्य राजा होगा और राज्योचित छत्र-चंवर धारण कर, घोड़ी पर पगड़ी, कलंगी व कटार बांध कर बैठेगा। यह गौरव उसे उसके विवाह के अवसर पर प्राप्त रहेगा। यह क्षत्रियोचित अधिकार अग्रवालों को आज भी प्राप्त है। विवाह के समय वर को कटार, छत्र-चंवर धारण कर घोड़े पर सवार कराया जाता है।

आदर्श-राज्य— महाराजा अग्रसेन ने 108 वर्षों तक निर्विघ्न शासन किया। इनके राज्य में सिंह और गाय एक घांट पर पानी पीते थे। उन्होंने जनहित एवं जन कल्याण के लिए अत्यन्त दूरदर्शिता, प्रजावत्सल, समाजसेवी व कूटनीतिज्ञ शासक के रूप में शासन किया। जन, जाति या धन के आधार पर ऊँच-नीच के भेद को मिटाकर सभी नागरिकों के साथ समानता का व्यवहार किया। सब को समान अधिकार दिये। राज्य में सुख-शान्ति और समृद्धि की स्थापना के लिए अपने पड़ौसी राजाओं से संधि और मित्रता स्थापित की और युद्धों से होने वाले विनाश के भय को समाप्त किया। युद्धों से मुक्ति पाकर, क्षात्र-धर्म को छोड़कर, समाज को सुखी और समृद्धशाली बनाये रखने के लिए वैश्य कर्म को बढ़ावा दिया। कृषि उत्पादन, व्यापार, देशाटन, पशुपालन आदि को प्रोत्साहित कर वैश्य वर्ण को प्रतिष्ठित कर प्रसिद्धि दिलाई।

वानप्रस्थ गमन— महाराजा अग्रसेन 133 वर्ष की आयु होने पर, अपनी वृद्धावस्था समीप जानकर परम आराध्या कुल देवी महालक्ष्मीजी के आदेश से धर्म का अनुसरण करते हुए अपने राज्य की बागडोर अपने ज्येष्ठ पुत्र विभु को सौंपकर उसे राजगद्दी पर बिठाया और अपनी रानियों और भ्राता

श्री शूरसेन के साथ वन में तपस्या करने प्रस्थान कर गये। दक्षिण में गोदावरी के तट पर ब्रम्हसर नामक तीर्थ पर तप करते हुए 193 वर्ष की आयु में अगहन मास की एकादशी को ब्रह्मलीन हो गये।

महाराजा अग्रसेन एक पौराणिक महापुरुष थे और अपने द्वारा प्रतिस्थापित ऐतिहासिक कार्यों से समूचे विश्व के लिए प्रेरणा के स्त्रोत हैं। उन्होंने सभी प्रकार से एक महत्वपूर्ण समाजवादी साम्राज्य की स्थापना करके विश्व के समक्ष अनूठे आदर्श और पद्धतियाँ प्रस्तुत किये हैं। ऐसे महान अवतारी पुरुष को शतशः प्रणाम और कोटिशः अभिनन्दन।

सम्मान— महाराजा अग्रसेन का महत्व राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जगत में विस्तार से फैला हुआ प्रसिद्धि को प्राप्त है। भारत सरकार ने उनकी स्मृति, यश और सम्मान में दिनांक 24 सितम्बर 1976 को विशेष समारोह आयोजित कर 25 पैसे मूल्य का एक विशेष डाक-टिकिट प्रसारित किया, जिसकी संख्या 80 लाख थी। उनके जीवन परिचय एवं उनके द्वारा स्थापित समाजवादी सिद्धान्तों के फोल्डर और अग्रोहा के खण्डहरों के चित्र से अंकित लिफाफे भी जारी किये।

दिल्ली से फाजिल्का तक के राष्ट्रीय राजमार्ग नं. 10 का नाम महाराजा अग्रसेन राष्ट्रीय राजमार्ग किया गया है।

नेशनल हाईवे नं. 1: भारत सरकार के भू-परिवहन मंत्रालय ने सुपर नेशनल हाईवे के निर्माण की घोषणा की है, जिसमें मार्ग न. 1 जो दिल्ली से लेकर कन्याकुमारी तक का है, का नामकरण महाराजा अग्रसेन पर किया गया है।

भारत सरकार के परिवहन मंत्रालय ने 350 करोड़ की लागत से 1,40,000 टन क्षमता वाले जहाज का नाम "महाराजा अग्रसेन जलपोत" रखा है, इस विशाल जहाज का जलावतरण मुंबई में अप्रेल 1995 को किया गया।

अग्रोहा की ऐतिहासिकता

महालक्ष्मी व्रत कथा के अनुसार महाराजा अग्रसेन के पश्चात् इनके वंश की अनेक पीढ़ियों ने इस गणराज्य के शासन का गौरवपूर्ण संचालन किया। महाराज विभु ने 100 वर्ष राज्य कर अपने पुत्र नेमिरथ को राज्य भार सौंपा। इसके बाद क्रमशः इनके वंशज विमल, शुकदेव, धनंजय, श्रीनाथ, दिवाकर, महादेव, यमाधार, शुभांग, मलय, बसु और नन्द हुए। वसु के बाद इनके छोटे भाई नन्द हुए। इस वंश के अंतिम राजा अग्रचंद्र हुए। कालान्तर में इस नगर का नाम भी परिवर्तन हुआ जो "अग्रसोई" नगर कहलाया।

प्रथम आक्रमण— ईशा से 326 वर्ष पूर्व भारत की भूमि पर यूनानी शासक सिकन्दर महान का आक्रमण हुआ। इस नगर के अन्तिम राजा उत्तमचन्द (अग्रचन्द) ने डटकर मुकाबला किया, लेकिन हार गया। इसमें मुकाबला करते नगर वासी हजारों अग्रवंशी मारे गये। बहुत से अग्रवंशी अग्रोहा पतन के पश्चात् अपने जीवन यापन के लिए आस-पास के अन्य राज्यों में जाकर बस गये।

अग्रसेन के अंतिम वंशज रतनचंद्र ने मौर्यवंश की स्थापना की। इस मौर्यवंश में बिन्दुसार एवं महाराजा अशोक महान हुए। इनके द्वारा अग्रोहा पुनः निर्माण और उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। अग्रोहा की समृद्धि विदेशी आततायियों को पुनः आकर्षित करने लगी।

द्वितीय आक्रमण— अग्रोहा जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैभवशाली नगर को आधिपत्य में लेने के लिए सन् 120 ईस्वी में कुशान राज्य के राजा कनिष्क ने आक्रमण किया। अग्रोहा नगर कुशान राज्य का अंश बनकर रह गया और अग्रवंशी व्यापार-व्यवसाय के लिए चारों ओर देश-देशान्तरों तक फैल गये। अग्रोहा पुनः वीरान हो गया।

इसी काल में अग्रोहा के पूर्व-निवासी सेठ हरभज शाह जो अग्रोहा शहर के नजदीक ही महमनगर में बस गये थे, ने अग्रोहा को पुनः आबाद करने में पहल की। हरभजशाह ने अग्रोहा में अपनी दुकान (मण्डी) खोली और घोषणा की, कि जो व्यक्ति अग्रोहा में आबाद होना चाहे, उसे लोक या परलोक में भुगतान की शर्त पर रकम या माल उससे उधार ले सकेगा। घोषणा सुनकर लोग अग्रोहा आने और बसने लगे।

इस प्रकार, अग्रोहानगर पुनः अपने वैभव को प्राप्त कर बस गया। लेकिन इस नगर पर आधिपत्य अन्य राज्यों के शासकों का बना रहा।

तृतीय आक्रमण— अग्रोहा के वैभव पराभव की कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई। अग्रोहा पर सन् 701 ईस्वी में तीसरी बार भीषण आक्रमण हुआ। इस समय अग्रोहा में धर्मसेन नामक राजा राज्य करता था। उज्जैन के राजा तोमरवंशी समरजीत राजपूत ने दिल्ली विजयकर फिर अग्रोहा पर हमला कर दिया। इसमें अग्रोहा अपनी रक्षा नहीं कर सका और नगर को फिर हानि उठानी पड़ी। इस बार 1400 स्त्रियों ने पुनः जौहर कर आत्मबलिदान किया। अग्रोहा से अनेक परिवार अन्यत्र बसने चले गये। अग्रोहा तोमरवंशियों के अधीनस्थ हो गया।

चतुर्थ आक्रमण— सन् 1191 ई. में मुलतान के सुलतान शाहबुद्दीन मुहम्मद गौरी के द्वारा भारत पर आक्रमण हुआ। इस बार गौरी के प्रबल आक्रमण से अग्रोहा पुनः उजड़ गया और एक छोटी सी आबादी के रूप में रह गया।

बार बार के आक्रमणों से व्यथित अग्रोहा के कुछ अग्रवंशी निवासी तत्कालिक बिजनौर जिले के मण्डावर नामक स्थान पर जाकर बस गये। सन् 1134 ई. के लगभग मण्डावर में अग्रवंशी उत्तराधिकारियों ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था हेतु एक किला बनवाया जो आज भी विद्यमान है। इस अग्र वंश का अन्तिम प्रतापी शासक अमीचन्द हुआ है जिसने अपने पराक्रम से विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। जिसने गुप्त साम्राज्य की स्थापना की। इनके काल में अग्रोहा नगर पुनः आबाद हुआ।

सन् 1351 से 1388 ई. के मध्य बादशाह फिरोजशाह तुगलक के काल में अग्रोहा नगर का अस्तित्व विद्यमान था। बादशाह तुगलक द्वारा हिसार-ए-फिरोजा नगर के निर्माण में अग्रोहा के अवशेषों की सामग्री का उपयोग किया था। सन् 1556 से 1605 के मध्य सम्राट अकबर के समय मुगल सेना का मुख्यालय भी अग्रोहा नगर रखा गया था।

कालान्तर में सन् 1765-1781 में पटियाला राजा के यशस्वी दीवान नन्नूमल अग्रवाल ने अग्रोहा को पुनः बसाने और उसका पुनर्निर्माण करने का एक ओर प्रयत्न किया। उन्होंने अग्रोहा में किले का पुनर्निर्माण कराया, जिसके अवशेष आज भी हैं उसे "दीवान का किला" कहते हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी में अग्रोहा का अस्तित्व कुछ अंश में मौजूद था। परन्तु इस नगर पर फिरंगियों द्वारा किये गये आधिपत्य का विरोध करने के फलस्वरूप अग्रोहा को पुनः अपना नामोनिशान खोना पड़ा। सन् 1857 ई. में अंग्रेजों ने युद्ध कर इस शहर को तोपों से उड़ाकर नेस्तनाबूद कर दिया। अग्रोहा पूर्णतया खंडहर मात्र रह गया।

अग्रोहा का पुनरोत्थान— अग्रवालों की पितृ भूमि अग्रोहा एक ऐसा पुण्य तीर्थ, पूर्वजों की समाधि स्थल है जहाँ की पावन वायु आज भी वीरों की गाथा गुनगुना रही है। अग्रोहा, अग्रवालों का विशिष्ट उद्गम स्त्रोत है जहाँ से अग्रजन निश्रान्त होकर सम्पूर्ण भारत में तथा विदेशों तक में फैलकर अपनी दान-दया-धर्म की पताका फहरा रहे हैं।

अग्रोहा हरियाणा राज्य के जिला हिसार के राष्ट्रीय राजमार्ग सं. 10, महाराजा अग्रसेन मार्ग पर हिसार से 20 कि.मी. तथा फतेहाबाद से 25

कि.मी., दिल्ली से 187 कि.मी. दूरी पर है। अग्रोहानगर के भग्नावशेष थेह 650 एकड़ भूमि में 87 फीट तक ऊँचे टीलों के रूप में विद्यमान है। टीलों के पश्चिम की ओर 310 एकड़ भूमि में विशाल अग्रोदक जलाशय (बांध) के चिन्ह विद्यमान हैं जिसे लक्खी तालाब कहते हैं। इसमें अब बहुत अच्छी खेती होती है। पास ही एक छोटा अग्रोहा गांव आबाद है। अग्रोहा के खंडहरों की सन् 1888 में की गई खुदाई से अग्रोहा के प्राचीन वैभव की जानकारी प्राप्त हुई।

वर्तमान अग्रोहा के पुनरुद्धार के प्रेरणा स्रोत स्वामी ब्रह्मानंद जी हिसार निवासी थे। इन्होंने महाराजा अग्रसेन जी की स्मृति में जयंती मनाने का शुभारम्भ संवत् 1964 आसोज सुदी एकम् से कराया। सन् 1908 ई. में आपने श्री विश्वनाथ लाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट के सहयोग से अग्रोहा में एक पक्का कुआँ बनवाकर व प्याऊ द्वारा शुद्ध पीने के जल की व्यवस्था कराई। सन् 1915 में सेठ भोलाराम डालमिया तथा लाला सांवलराम के सौजन्य से गौशाला का निर्माण कराया। तत्पश्चात् सन् 1939में कलकत्ता निवासी सेठ रामजी दास बाजोरिया के सद्प्रयत्नों से महाराज अग्रसेन जी का एक मन्दिर तथा धर्मशाला का निर्माण कराया। मंदिर में अग्रसेन जी की संगमरमर की प्रतिमा की स्थापना कराई।

सन् 1965 में यहाँ श्री अग्रसेन इंजीनियरिंग एण्ड टैक्नीकल कॉलेज सोसायटी की स्थापना हुई। इसी नाम से 400 बीघा भूमि खरीदी गई, जिसमें मास्टर लक्ष्मीनारायण व सेठ तिलकराज अग्रवाल आदि का विशेष योगदान रहा।

दिल्ली की अग्रविभूति रामेश्वर दास गुप्त ने अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन के दि. 5 अप्रेल 1975 को हुए सम्मेलन में अग्रोहा विकास करने का निर्णय लिया कि अग्रोहा के खण्डहरों की खुदाई केन्द्र व हरियाणा सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा कराई जावे तथा अग्रोहा को अग्रवालों का तीर्थस्थल घोषित किया जाय। अतः अग्रोहा विकास के लिए "अग्रोहा विकास ट्रस्ट" की स्थापना कर दि. 9 मई, 1976 को की गई।

श्री अग्रसेन इंजीनियरिंग एण्ड टैक्नीकल कॉलेज सोसायटी, अग्रोहा के द्वारा क्रय की गई भूमि में से 23 एकड़ भूमि अग्रोहा विकास ट्रस्ट को अग्रोहा धाम मंदिर निर्माण हेतु दिनांक 5.10.1976 को निःशुल्क उपलब्ध कराई गई। हरियाणा सरकार के सौजन्य से अग्रोहा में पानी की समुचित व्यवस्था कराई गई। मई 1977 में तिलक राज अग्रवाल के संयोजन में सर्वप्रथम एक धर्मशाला 22 कमरों वाली का निर्माण कार्य शुरु हुआ जो सन् 1979 में बनकर तैयार

हो गये। दिनांक 31.10.1982 को **महाराजा अग्रसेन का मंदिर** तैयार हुआ। उद्घाटन् के अवसर पर राजीव गांधी, श्री सीताराम केसरी, चौधरी भजनलाल आदि अनेक केन्द्रीय एवं राज्य मंत्री व लाखों की संख्या में जन समूह उपस्थित हुआ।

अग्रसेन मंदिर के बाद **महालक्ष्मी जी का मंदिर** बनाया जाने लगा जो 28.10.1985 को तैयार हो गया।

धर्मशाला— अग्रोहा निर्माण समिति के अध्यक्ष श्री नंदकिशोर गोयन्का तथा इनके पुत्र सुभाष गोयल ने धर्मशाला की पहली मंजिल पूरी करवाई। शक्ति सरोवर तक नहर से पानी लाने के लिए तीन कि.मी. लम्बे नाले का पक्का निर्माण कराया। दिनांक 18.10.1986 को शक्ति सरोवर का शुभारंभ हुआ।

शक्ति सरोवर— शक्ति सरोवर के चारों ओर तिमंजिला अतिथि भवन तैयार कराया। सरोवर में समुद्र-मंथन की भव्य एवं अद्भुत झांकियों का निर्माण हुआ। 1992 में **माँ सरस्वती** का मंदिर बनाया गया।

अस्पताल— श्री बनारसीदास गुप्त के प्रयत्नों से हरियाणा सरकार ने "अग्रोहा विकास बोर्ड" का गठन 1987 में किया और 8.4.1988 को महाराजा अग्रसेन मेडिकल एजुकेशन एण्ड साइंस्टिफिक रिसर्च सोसायटी का गठन कर 267 एकड़ भूमि संस्थान को आवंटित की। 21.5.1989 को डी-फार्मेसी कॉलेज तथा 16.7.1998 को ओ.पी.डी. अस्पताल भी आरम्भ कर दिया गया।

शक्ति शीला मंदिर— अग्रोहा में हुई अनेकों सतियों की पुरानी मढ़ियाँ हैं। इन्हीं मंदिरों में शक्ति शीला माता की मढ़ी है। इस मंदिर का निर्माण कर श्री तिलकराज अग्रवाल ने 16 फरवरी 1992 को इस मंदिर में देवी देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा कराई।

मंदिरों के सामने विशाल सत्संग-भवन का निर्माण— महाराज अग्रसेन, कुलदेवी महालक्ष्मी तथा सरस्वती के तीनों मंदिरों के सामने विशाल एवं भव्य सत्संग भवन का निर्माण हुआ। इस आधुनिकतम भवन में पांच हजार व्यक्ति एक साथ बैठकर सत्संग कर सकते हैं।

अग्रोहा-धाम में डाकघर का निर्माण करवाकर चालू करवाया गया। अब अग्रोहा-धाम का अपना डाकघर है। मजदूरों के लिए उनके क्वार्टरों का भी निर्माण किया गया है।

वाटर-वर्क्स का निर्माण— अग्रोहा-धाम में अपने स्वतंत्र वाटरवर्क्स का निर्माण करवाया गया। पानी को एकत्रित करके, उसे साफ करने और लिफ्ट करके टंकियों में भेजने की व्यवस्था करवाई गई। अब इन टंकियों द्वारा ही सारे परिसर में पानी सप्लाई होता है।

रसोईघर आदि का निर्माण (महाराजा अग्रसेन सेवा सदन भोजन कक्ष)— धर्मशाला के सामने बड़े-बड़े डाइनिंग-हालों का निर्माण हो चुका है। इसमें सैकड़ों बंधु एक साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं।

हनुमान जी की दर्शनीय प्रतिमा— अग्रोहा धाम में पश्चिमी किनारे पर हनुमान जी की 90 फुट ऊंची भव्य दर्शनीय प्रतिमा है। विश्व भर में लगी हनुमान जी की प्रतिमाओं में यह सबसे ऊंची प्रतिमाओं में से एक है।

बृजवासी अतिथि भवन का निर्माण— अग्रोहा-धाम में अग्रोहा विकास ट्रस्ट की जिला मथुरा समिति द्वारा 30 लाख रुपए की लागत से बृजवासी अतिथि भवन का निर्माण करवाया गया। इसके द्वार पर **अग्रेश्वर महादेव का मंदिर** बनाया गया है।

बालक्रीडा-केंद्र (अप्पू घर)— अप्पूघर का निर्माण कर बच्चों और किशोरों के मनोरंजन के लिए बहुत से झूलों, हिंडोलों, रेलों के अतिरिक्त, मनोरंजन के अति आधुनिक अनेक साधन जुटाए गए हैं।

नौका विहार का निर्माण— नौका विहार के लिए गोलाकार नहर का निर्माण करवाया और चौतरफा नहर के बीच एक अति आधुनिक रेस्टोरेंट और फुलवारी आदि लगवाकर सुंदर और रमणीक वातावरण तैयार किया।

वैष्णो देवी मंदिर का निर्माण— वैष्णो देवी की मान्यता को देखते हुए अग्रोहा में मां वैष्णो देवी के मंदिर की स्थापना की गई है। इसके लिए अग्रोहा में कुलदेवी महालक्ष्मी मंदिर के गुंबद के ऊपर लगभग 400 मीटर लंबी गुफा का निर्माण करा, उनमें मां वैष्णों देवी की पिंडियां स्थापित की गई।

रोपवे तथा बाबा भैरों मंदिर— वैष्णों देवी मंदिर के समीप सरस्वती मंदिर के गुंबद पर कृत्रिम गुफाएं नुमा बाबा भैरवनाथ के मंदिर का निर्माण कराया गया तथा उसे वैष्णों देवी के मंदिर से जोड़ने के लिए रोपवे का निर्माण कराया गया।

भगवान श्री कृष्ण की विद्युत चालित झांकियों का निर्माण— महालक्ष्मी मंदिर के नीचे भगवान श्री कृष्ण की विभिन्न जीवन लीलाओं पर आधारित 17 विद्युत चालित झांकियों का निर्माण किया गया।

तिरुपति बालाजी के मंदिर तथा पांच मंजिली लिफ्ट का निर्माण— दक्षिण में तिरुपति बालाजी के महत्व को देखते हुए अग्रोहा धाम में तिरुपति के समान ही बालाजी का भव्य मंदिर बना, दर्शनार्थियों की सुविधार्थ पांच मंजिली लिफ्ट का निर्माण किया गया।

श्री अमरनाथ गुफा एवं पवित्र हिमानी शिवलिंग— महाराजा अग्रसेन मंदिर के गुंबद के ऊपर पावन अमरनाथ की गुफा एवं बर्फानी शिवलिंग का निर्माण कराया गया, जहाँ निरंतर बर्फ से शिवलिंग बनता रहता है और उसके दर्शन होते रहते हैं।

इस प्रकार अग्रोहा अपने गौरवपूर्ण निर्माण के 25 वर्षों की अवधी पूर्ण कर आज अग्रोहाधाम पांचवे तीर्थधाम के रूप में विकसित और पूरे देश के पर्यटन मानचित्र पर अपना विशिष्ट स्थान बना चुका है, इसके लिए अग्रोहा विकास ट्रस्ट असंख्य निष्ठावान कार्यकताओं, दानदाताओं, समर्पित समाजसेवियों का आभारी है। आशा है, आप सबके प्रयत्नों से अग्रोहा पाँचवे तीर्थ धाम के रूप में आने वाले समय में और भी बुलंदियों को छूएगा। अग्रवाल कुल में उत्पन्न महापुरुषों और मनीषियों का एक वृहद् समुदाय है, जो राष्ट्र निर्माण में अग्रणी रहे हैं, उनका जीवन अनुकरणीय है जिनके जीवन वृत्त भी प्रकाशित हुए हैं।

महाराजा अग्रसेन के नाम से भारत ही नहीं, भारत से बाहर विदेशों में भी अनेक विद्यालय, धर्मशालाऐं, अस्पताल, मार्ग और नगर स्थापित हो चुके हैं। हजारों की संख्या में उनकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित की गई हैं। हजारों संस्थाऐं समाज के विकास और समृद्धि के लिए बन चुकी है। महाराजा की प्रतिवर्ष जयंतियाँ बड़ी धूम-धाम से मनाई जा रही है। आप प्रेरणा के स्त्रोत और धर्म व एकता के प्रतीक है। आप के ध्वज के नीचे सम्पूर्ण राष्ट्र का वैश्य समाज यश और समृद्धि से परिपूर्ण है। आपका आशीर्वाद पुष्पित-पल्लवित हो रहा है।

जय अग्रसेन - जय अग्रोहा - जय अग्रवाल।
हे वंश प्रवर्तक अग्रदूत, ओ पूज्य पितामह अग्रसेन।
स्वीकार करो मेरा प्रणाम, तुमको प्रणाम शत शत प्रणाम।।

— चाँदबिहारी लाल गोयल
'साहित्य-रत्न, साहित्य निधि'
ए-64, लक्ष्मीनारायणपुरी, जयपुर

—*—